व्यंग्य की शक्तिमत्ता एवं भाषा

डॉ0 अनुपम कुमार वर्मा *

सारांश

वर्तमान समय में साहित्य के हल्के पड़ते जाते सामाजिक हस्तक्षेप में 'व्यंग्य' ही वह विधा है जो लम्बे समय तक अपनी उपस्थिति का एहसास पाठकों को करा सकती है या लम्बे समय तक उनके ज़ेहन को झकझोर सकती है। किसी भी व्यंग्य रचना का औचित्य मात्र प्रहार नहीं होना चाहिए। यद्यपि कभी–कभी ऐसी परिस्थिति होती है जबकि टूटने योग्य को तोड़ना श्रेयस्कर होता है, किसी भी व्यंग्य का उद्देश्य हमेशा सृजनात्मक तथा निर्माण कार्य होता है। व्यंग्य का अभ्युदय युग की सच्चाइयों के साथ होता है। जो व्यंग्य जितना ही तीक्ष्ण एवं पैना होता है उसमें युग को वाणी देने की क्षमता उतनी ही प्रखर होती है। व्यंग्य युग–द्रष्टा होता है। सत्य को सम्प्रेषित करने की अनिवार्यता के पीछे यह तथ्य सर्वथा छुपा रहता है कि विसंगतियों के साथ किसी भी प्रकार की स्वछंदता बरत कर उसे कलुष करने की ओर प्रवृत्त न करें। यह सर्वस्वीकार्य, सर्वयुगीन सत्य है कि व्यंग्य, व्यंग्य के लिए नहीं होता है। यह व्यंग्य का अत्यन्त ही छुद्रतम उद्देश्य है कि व्यंग्य केवल व्यंग्य के लिए किया जाए। उद्देश्यहीन एवं पथभ्रष्ट व्यंग्य, व्यंग्य की कोटि से नीचे गिर जाता है। व्यंग्य, व्यंग्य के लिए नहीं अपितु सत्य के लिए होता है। सत्य का सम्प्रेषण व्यंग्यकार के कौशल, नैतिक साहस, शाब्दिक आक्रमण क्षमता एवं विसंगति की गहरी समझ पर निर्भर करता है तथा इससे पूरी तरह सम्बद्ध होता है। व्यंग्य का मूलमंत्र सत्य है।

डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य के शक्ति और स्वरूप को चिन्हित करते हुये लिखा है– "व्यंग्य वह है जहाँ कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुननेवाला तिलमिला उठे; और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने आपको उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"1

द्विवेदी जी ने इस परिभाषा में व्यंग्य और व्यंग्यकार की शक्तिमत्ता प्रतिपादित करते हुये व्यंग्य की एक सही दृष्टि का अवलोकन किया। इस सच्चाई से इन्कार नहीं किया जा सकता कि व्यंग्य का क्षेत्र हमारा सम्पूर्ण जीवन है और इस जीवन में व्याप्त विकृतियाँ, विसंगतियाँ, अन्तर्विरोध और कुरूपता के विरोध में उसका उपयोग किया जाता है। हरिशंकर परसाई ने भी व्यंग्य को इसी रूप में ग्रहण किया है। इसके बारे में अपना विचार व्यक्त करते हुये परसाई ने लिखा है–

"हाँ, व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखण्डों का पर्दाफाश करता है– यह नारा हो गया– नारा नहीं है, मैं यह कह रहा हूँ कि जीवन के प्रति व्यंग्यकार की उतनी ही निष्ठा होती है जितनी गम्भीर रचनाकार की बल्कि ज्यादा ही। वह जीवन के प्रति दायित्व का अनुभव करता है।"2

परसाई एक जगह और लिखते हैं कि –''सही व्यंग्य व्यापक जीवन परिवेश को समझने से आता है। सामाजिक आर्थिक, राजनीतिक परिवेश की विसंगति, मिथ्याचार असामंजस्य, अन्याय आदि की तह में जाना; कारणों का विश्लेषण करना, उन्हे सही परिप्रेक्ष्य में देखना इससे सही व्यंग्य बनता है। जरूरी नही की व्यंग्य में हँसी आये, यदि व्यंग्य चेतना को झकझोर देता है, विद्रूप को सामने खड़ा कर देता है, आत्म साक्षात्कार करता है, सोचने को बाध्य करता है, व्यवस्था के सड़ान्ध को इंगित करता है तो वह सफल व्यंग्य है। जितना व्यापक परिवेश होगा, जितनी गहरी विसंगति होगी और जितनी तिलमिला देनेवाली अभिव्यक्ति होगी व्यंग्य उतना ही सार्थक होगा।"3

* 400–एफ, आजाद नगर, रूस्तमपुर, गोरखपुर (उ0प्र0)

वास्तव में हास्य और व्यंग्य का यही बुनियादी अन्तर भी है कि हास्य मनुष्य को सोचने के लिए बाध्य नहीं करता जबकि व्यंग्य सोचने और कुछ करने के लिए प्रेरित करता है। व्यंग्य संवेदनशील एवं सत्यनिष्ठ मन द्वारा विसंगतियों पर की गयी प्रतिक्रिया है– एक ऐसी प्रतिक्रिया जिसमें उपर से कटुता और हास्य की झलक मिलती है। लेकिन उसके मूल में करूणा और मित्रता का भाव विद्यमान होता है।

व्यंग्य असंतोष की वजह से पैदा होता है लेकिन यह संवेदनशील और करूण हृदय की असंतोष की प्रतिक्रिया के रूप में उपजता है। कबीर भी प्रचण्ड व्यंग्यकार थे उनका व्यंग्य सुनने वाले को तिलमिलाकर रख देता था पर महज़ किसी का मजाक उड़ाने या उपहास करने के लिए नहीं बल्कि उसे सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा देने के लिए। कबीर का व्यंग्य करूणा से उपजा है, अक्खड़ता तो सिर्फ उसकी ढ़ाल है। कबीर चेतना के धरातल पर जगे हुये थे और विसंगतियेां एवं मूढ़ताओं को समझते थे और उस पर प्रहार को आवश्यक मानते थे; इसलिए व्यंग्य करते थे। वह कहा करते थे–

"सुखिया सब संसार है खावै अरू सोवै
दुखिया दास कबीर है जागै अरू रौवे।

वास्तव में व्यंग्य वही कर सकता है जो जगा हुआ हो और अपने संस्कार एवं चरित्र से नैतिक हो। व्यंग्य एक ऐसा औजार है जो जीवन के झाड़–झंखाड़ को काट फेंकता है। समाज में कोई परम्परा जीवन को शक्ति देने के बजाय अगर जीवन को बीमार बना देती है, समाज की कोई विसंगति, अन्याय अनाचार, पाखण्ड और दम्भ, जो समाज के लिए घातक हैं, अशुभ है तो व्यंग्य उन इन सारी चीजों पर चोट करता है। जाहिर है यह चोट सात्विक होती है और ऐसी सात्विकता मानवीय करूणा और सरोकार से पैदा होती है। व्यंग्य का तो मूल विषय ही पाखण्ड होता है। व्यंग्य खरी–खरी बातों को सहज रूप से कह देने का अनोखा अंदाज है। व्यंग्य की शक्ति उसकी सतर्कता है। बिना सतर्कता व विवेक के छद्म को पकड़ा ही नहीं जा सकता। व्यंग्यकार का सतर्क विवेक छद्मों को पकड़ लेता है, स्वांग को उघाड़ने देता है लेकिन कई जगह व्यंग्यकार सवांग और छद्म की नंगई उधाड़ने के लिए जरूरी नही कि वह सतर्कता बरतते हुये दिखे। बालमुकुन्द गुप्त भंग की तरंग में होने का नाटक करते हुये मदहोश भंगेंड़ी की भूमिका में आकर विसंगतियों व छद्मों की बखिया उधेड़ते थे।

व्यंग्य सीधी चीज नहीं है। वह टेढ़ी चीज़ है। स्वयं 'व्यंग्य' शब्द में भी यह टेढ़ापन परिलक्षित हो जाता है। व्यंग्य सीधे–सीधे नहीं किया जाता, उसके लिए कोई न कोई आड़ चाहिए, कोई बहाना चाहिए। बालमुकुन्द गुप्त और परसाई ने भी इस आड़ का सहारा लिया है। बालमुकुन्द गुप्त भँगेड़ी की भूमिका की आड़ लेते हैं और परसाई अपने व्यंग्य में 'मैं' का मुखौटा ओढ़ते हैं।

व्यंग्य लेखन में कल्पनाशीलता का सहारा ज्यादा दूर तक नहीं लिया जा सकता। व्यंग्य की शक्ति यथार्थ के अनुभव से पैदा होती है। इस दृष्टि से परसाई का व्यंग्य ज्वलंत उदाहरण है। सच्चा व्यंग्य उन आँखों को जो देखना नहीं चाहती, उन कानों को जो सुनकर अनसुनी कर देते हैं, उन हृदयों को जो अनुभूति से रहित हो गये हैं और उन मस्तिष्कों को जो समझना नहीं चाहते अपने शक्ति द्वारा सही राह पर ले आता है। व्यंग्य छिपी हुई दुर्बलताओं को उभार देता है। जो असत्य है, असंगत है उनपर हमला करता है। सच्चा, खाँटी और खरा व्यंग्य साहित्य में निष्ठा और प्रतिरोध की भूमिका निभाता है। वह जनता के पक्ष में खड़े होकर हर उस चीज़ का विरोध करता है जो जनता के हितों के विरूद्ध होती है। श्यामकश्यप ने व्यंग्य की शक्तिमत्ता को चिन्हित करते हुये लिखा है–

"वस्तुतः व्यंग्य ही एक ऐसा कारगर अस्त्र है जो तमाम अन्तर्विरोधों को उभारकर उनकी तीक्ष्ण आलोचना करता है तथा बड़ी से बड़ी तानाशाही सत्ता और अमानवीय क्रूरता को दण्ड देने का नैतिक साहस करता है।"4

व्यंग्य की भाषा कैसी होनी चाहिए यह बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल है। व्यंग्यकार की सफलता काफी हद तक उसकी भाषा की सहजता और जीवंतता पर निर्भर करती है। व्यंग्य की भाषा का आदर्शरूप देखना हो तो परसाई जी द्वारा आखिरी दौर में लिखे गये निबन्धों को देखना चाहिए। कहीं भी बनावटी भाषा दिखाई नहीं देती, व्यंग्य में जो बिंब होते हैं, जो रूपक और चित्र विधान लिये जाते हैं, वे बिल्कुल आम जनजीवन से लिए हुये होने चाहिए। कबीर की भाषा ऐसी ही थी और परसाई की भाषा भी इसी कमाल का साक्षात् कराती है। भाषा के तेवर वही होने चाहिए जो लोक में प्रचलित हो कहीं भी प्रकट रूप में अपने साहित्यिक भाषा ज्ञान के प्रदर्शन का भाव न हो तो उस भाषा में इतना दम और इतनी धार आ जाती है कि सीधे पाठकों के मर्म को भेदकर उसे मर्माहत और बेचैन कर देती है। परसाई की भाषा का एक नमूना यहाँ भी देखें–

"सिर्फ यह नहीं है कि ईसा अपना सलीब खुद ढो रहा है या सूली पर टंगा है। ईसा को अपने पाँवों पर अपने हाथों से कील ठोकने को मजबूर किया जा रहा है और वह कह रहा है–पिता, इन्हें हरगिज माफ मत करना, क्योंकि ये साले जानते हैं, ये क्या कर रहे हैं।5

"आवरण में छिपे हुये पाखण्ड का पर्दाफाश करने के लिए व्यंग्यकार जब भाषा से जुझता है तो भाषा की सामान्य संरचना टूट जाती है और उसकी भाषा एक विशेष प्रकार की अर्थशक्ति ग्रहण करती है जो पाखण्ड पर चोट करती, उसे चीरती हुयी निकलती है। वह सहलाती नहीं, जलाती है। इस लिहाज से व्यंग्य को 'भाषा की लपट' कहे, तो गलत नहीं होगा। डॉ0 नामवर सिंह ने इसे ही साहित्य के अन्दर 'परमाणु युग' और 'भाषा का विस्फोटक प्रभाव' कहा है।"6

व्यंग्य की भाषिक शक्तिमत्ता को परसाई के साहित्य में बिखरे व्यंग्य सूक्तियों में देखा जा सकता है–

1. घूस से पारिवारिक जीवन सुखी होता है।
   (परसाई रचनावली–1, पृ0सं0–54)
2. रोटी बड़े–बड़े क्रान्तिकारियों को कमजोर बनाती है।
   (परसाई रचनावली–1, पृ0सं0–70)
3. निन्दा का उद्‌गम ही हीनता व कमजोरी से होता है।
   (परसाई रचनावली–3, पृ0सं0–31)
4. अक्षमता नैतिक उपदेश की जननी होती है।
   (परसाई रचनावली–3, पृ0सं0–152)
5. हर सत्य के हाथ में झूठ का प्रमाण पत्र होता है।
   (परसाई रचनावली–3, पृ0सं0–192)
6. कमजोरी नैतिकतावाद की माँ होती है।
   (परसाई रचनावली–2, पृ0सं0–103)
7. इस देश में पुल बनाने की एक नई तकनीक चल पड़ी हैं, जिसमें सीमेंट की जगह ईमान का इस्तेमाल किया जाता है।
   (परसाई रचनावली–3, पृ0सं0–115)

ये आम जनजीवन में बोली जानेवाली भाषा की शक्ति है। लगता है जैसे मेरी आपकी बात–चीत का कोई टुकड़ा उठा लिया गया है। कुछ समीक्षकों ने इसे 'अखबारी भाषा' कहकर खारिज़ करने की कोशिश भी की थी लेकिन यह भाषा 'लोकसंवाद' की भाषा है। इस भाषा में जो शक्ति है और जो जीवंतता है वह निरन्तर संवादधर्मिता के कारण ही सम्भव हो पायी। यह अनायास ही नहीं था कि

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने भी औपनिवेशिक सामंती व्यवस्था पर प्रहार के लिए व्यंग्य को ही हथियार के रूप में चुना था।

सन्दर्भ :

1. कबीरः हजारी प्रसाद द्विवेदी पृ0सं0–24
2. 'सदाचार का ताबीज' (कैफियत) परसाई, पृ0सं0–10
3. मेरी श्रेष्ठ रचनाएँ (लेखक की बात) : परसाई जी, पृ0सं0–13
4. आलोचना, जनवरी–मार्च 85, पृ0सं0–36
5. परसाई रचनावली–3, पृ0सं0–316
6. 'हिन्दी गद्य लेखन में व्यंग्य एवं विचार डॉ0 सुरेकान्त, पृ0सं0–73